P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-2) May- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

सारोकिन का सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन का सिद्धान्त : एक समालोचनात्मक संदर्भ

इन्दिरा श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर,
समाजशास्त्र विभाग,
ईश्वर शरन डिग्री कालेज,
प्रयागराज, उ.प्र., भारत

सारांश

सोरोकिन ने ''द क्राइसिस ऑफ अवर एज'' अध्याय में लिखा है कि हम लोग वस्तुतः दो युगों के मध्य में हैं : हमारी शानदार बीते हुये कल की मृतप्राय चेतनात्मक संस्कृति और आने वाली आदर्शात्मक या परोक्षवादी संस्कृति या रचनात्मक आने वाले कल। हम लोग छः सौ वर्ष लम्बे चेतनात्मक दिन के अन्त में रह रहे हैं। विचार कर रहे हैं तथा कार्य कर रहे हैं। ''शान के सूर्य की किरणें अब भी अतीत युग की शान को प्रकाशित कर रही है। लेकिन प्रकाश धीरे–धीरे कम हो रहा है और गहरे होती (अन्धकार की) छाया में तथा गोधूलि के भ्रम में हमें अपने को सुरक्षित समझने में कठिनाई हो रही है। इससे परे महान आदर्शवादी या परोक्षवादी संस्कृति की ऊषा शायद भविष्य की पीढ़ियों के स्वागत के लिये प्रतीक्षा कर रही हैं।''

इस प्रकार इतिहास, परिवर्तन (गत्यात्मक) की समय सारिणी के साथ आगे की ओर बढ़ रहा है। चेतनात्मक संस्कृति का महान संकट इसकी स्तंम्भित प्रत्यक्ष दृष्टि (पतन) में है। हमारी आँखों के सामने यह संस्कृति आत्महत्या कर रही है। यदि यह हमारे जीवनकाल में नही मरती तो यह आत्म–विनाश के धावों से और इसकी रचनात्मक शक्तियों से खाली यह कठिनता से पुनः संभल सकती है।

मुख्य शब्द : संस्कृति, परिवर्तन, सभ्यता, सुखवाद, अन्तर्व्यापी परिवर्तन, सांस्कृति एकीकरण।

प्रस्तावना

परिवर्तन जीवन का शाश्वत नियम है। अधिकांश शास्त्रीय सामाजिक सांस्कृतिक उद्विकासवादियों ने कुछ निश्चित अवस्थाओं की कल्पना या प्रस्थापना की है जिससे होकर प्रत्येक समाज या संस्कृति को एक निश्चित क्रम में अवश्य गुजरना पड़ता है।

यद्यपि सामाजिक परिवर्तन सदा होता रहा है किन्तु एक सभ्यता के विकास क्रम में कुछ ऐसे दौर आते हैं जो अपने तत्वों एवं एकीकरण के प्रतिमानों में तुलनात्मक स्थिरता लिये होते हैं। उसी प्रकार कुछ ऐसे भी दौर होते हैं जिनकी विशिष्टता पुराने सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूपों के दबाव एवं नये स्वरूपों की प्रस्थापना होती है। एक संस्कृति सभ्यता के विभिन्न पक्षों के आपस में संश्लिष्ट होने के तरीकों की अनेक प्रकार से व्याख्या की प्रस्तावना की जाती रही है।

सोरोकिन समाज के विकास को अनियमित मानता है। इसी भाव को प्रकट करने के लिये उसने ''उच्चावचय'' या ''चढ़ाव–उतार'' का नियम प्रतिपादन किया। परन्तु क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार समाज या संस्कृति पहले एक ऊँचाई पर चढ़ जाती है। फिर बिल्कुल नीचे, उससे विरूद्ध नीचाई पर उतर आती है, इसलिये उसने इसे अनियमित कहा है। सोरोकिन का विकास या प्रगति के संबंध में अपना निश्चित मत है। वह वर्तमान युग के विकास को, प्रगति को, ''उन्नति'' मानने के लिए तैयार नहीं है। यह एक प्रकार का परिवर्तन है, परन्तु प्रत्येक परिवर्तन उन्नति नहीं कहा जा सकता है।

अध्ययन का उद्देश्य

टायनबी तथा सोरोकिन दोनों समकालीन हैं, और दोनों ने समाजशास्त्र की दृष्टि से संसार के इतिहास, सभ्यता तथा संस्कृति को समझने के लिये विशालकाय ग्रन्थों का निर्माण किया है। उल्लेखनीय है कि दोनों ने 19वीं शताब्दी के समान 20वीं शताब्दी में भी अपने क्रान्तिकारी रूप को ही रखा। परिणामस्वरूप दोनों ने 20वीं शताब्दी के दर्शनों, नियम विहीनता और निराशा से अपने को दूर रखा और अधिक मौलिक उत्तरों की ओर देखा उनके उत्तर नव–गत्यात्मक प्रत्यक्ष समाजशास्त्र के शब्दों में समाप्त किये जा सकते हैं।

20वीं शताब्दी के नव–गत्यात्मक प्रत्यक्षवाद के कुछ निश्चित स्वीकृति तथ्य हैं। सर्वप्रथम यह आग्रह करता है कि सभी समाज व्यवस्थाओं में परिवर्तन निश्चित है। इसलिये एक समाजशास्त्री को यह नहीं पूछना चाहिये कि परिवर्तन क्यों है? या क्या परिवर्तन होगा? बल्कि कब और किस प्रकार का परिवर्तन होगा?

सोरोकिन की उपकल्पना है कि दो स्थिर प्रकार की संस्कृतियों के बीच उच्च संस्कृति निरन्तर चक्रीय गति करती है। दो स्थिर प्रकार चेतनात्मक व परोक्षवाद संस्कृतियाँ हैं।

सोरोकिन ने संस्कृति को परिभाषित करते हुये लिखा है कि विस्तृत माने में संस्कृति दो या दो से अधिक व्यक्तियों के चेतन या अचेतन क्रिया–कलापों का योग है जो कि एक दूसरे से अन्तःक्रिया करते हैं। सोरोकिन के अनुसार न केवल विज्ञान, दर्शन, कला, धर्म एवं प्रमुख सभ्यतायें–सांस्कृतिक घटनायें हैं किन्तु रोबिन्सिन क्रूसो द्वारा बर्बरों द्वारा धूल पर छोड़े गये पद चिन्हों का अवलोकन तथा पुरातत्ववेत्ताओं द्वारा खोजे गये पृथ्वी पर पूर्व ऐतिहासिक जनजातियों द्वारा छोड़ी गयी अस्थियाँ एवं राख भी संस्कृति के ही एक भाग हैं।

साहित्यावलोकन

हेरेक्लिटिस[1] एक ग्रीक दार्शनिक था जिसने कि परिवर्तन के विचार को खोजा। हेरेक्लिटिस ने कहा था कि सभी वस्तुयें परिवर्तन के बहाव में हैं। दूसरी ओर पारमेनीडेस जैसे विचारक भी हुये हैं जो परिवर्तन के तथ्य से इंकार करते हैं। उनका विश्वास है कि संसार की प्रत्येक वस्तु वैसी की वैसी ही बनी रहती है उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता, परिवर्तन तो मात्र भ्रम हैं।

सामाजिक जीवन के क्षेत्र में परिवर्तन के प्रति दृष्टिकोण का सूत्रपात अनेक समाज विचारकों द्वारा किया जा चुका था परन्तु सामाजिक परिवर्तन को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण देने का श्रेय समाजशास्त्र के पिता अरस्तू कोन्स को है। कोन्त[2] ने विचारों के तीन अवस्थाओं के नियम में परिवर्तन के सिद्धान्त को समाविष्ट किया। सामजिक परिवर्तन को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण देने की इस परम्परा का निर्वाह सांस्कृतिक क्षेत्र में आगबर्न[3], ओस्वाल्ड स्पेग्लर[4], आर्नल्ड टायनबी[5] ने किया।

मनुष्यों की मूलभूत, नैमित्तिक तथा संश्लेषणात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली व्यवस्था के रूप में (बी0 मैलिनोस्की)[6] सौन्दर्यात्मक प्रतिमानों के रूप में (रूथ बेनेडिक्ट)[7] तथा कुछ निश्चित मूलभूत तात्विकीय तथा पूर्वानुमानों पर आधारित तर्क सार्थक व्यवस्था के रूप में (सोरोकिन)[8] के नाम अग्रणी हैं।

प्रस्तुत अध्ययन सोरोकिन के विचारों की ऐतिहासिक समीक्षा पर आधारित है। सोरोकिन (1889–1968) स्पेंग्लर की इस विचारधारा से कि संस्कृतिक अपने जन्म से विभिन्न अवस्थाओं को प्राप्त होती हुई अनिवार्यतम् मृत्यु को प्राप्त होती है, अत्यधिक दुःखी था।

सोरोकिन ने लिखा है कि :–

"My thesis has little in common with the age old theories of the life cycle of cultures and societies with its stages of childhood, maturity, senility and decay[9]."

सोरोकिन ने इस 4 खण्डों के ग्रंथ में कला, साहित्य, सत्य और ज्ञान, सांस्कृतिक मानसिकता, सामाजिक संबंधों की व्यवस्था आदि में उतार–चढ़ाव को भी प्रस्तुत किया है। सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट करने के लिये सोरोकिन ने सम्पूर्ण इतिहास की व्याख्या की है कि संस्कृति के बुनियादी स्वरूपों में परिवर्तन से सामाजिक परिवर्तन होता है। सोरोकिन का कहना है कि समाज के विकास की कोई निश्चित दिशा नहीं है न समाज एक दिशा में विकसित होता है। न वह चक्रवत विकसित होता है, समाज के विकास में उच्चावचय होता रहता है। सोरोकिन तथा अन्य समाजशास्त्रियों के विचार में मौलिक भेद यह है कि एक दूसरे समाजशास्त्री सामाजिक विकास को नियमबद्ध मानते हैं, कोई एकदैशिक विकास तथा कोई चक्रिय विकास मानते हैं, विकास होता है परन्तु किसी एक नियम से बंधा होता है।

सोरोकिन के अनुसार संस्कृति के दो पहलू हैं :–

(1) आन्तरिक पहलू
(2) वाह्य पहलू

आन्तरिक पहलू को सोरोकिन ने संस्कृति मानसिकता के रूप में उद्धृत किया है। इसमें आन्तरिक, विचार, संकल्प भावनायें अनुभव और संवेग सम्मिलित हैं।

द्वितीय (वाह्य) पहलू असावयव और सावयव घटना का मिश्रण है। वाह्य घटना संस्कृति की व्यवस्था के अन्तर्गत आती है जिस प्रकार वह इसके आन्तरिक पहलू का प्रकटीकरण है।

संस्कृति के प्रकार

परोक्षवादी संस्कृति

इस संस्कृति में वास्तविकता अप्रत्यक्षवादी, अभौतिकके रूप में देखती जाती है। आवश्यकताओं और साधन पूर्णतया आध्यात्मिक होते हैं। इसका सम्बन्ध इन्द्रियों व भौतिक जगत से नहीं अपितु आत्मा तथा मन से होता है। सत्य को स्पर्श अथवा दर्शन से नहीं अपितु अतीन्द्रिय साधनों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। इस संस्कृति में विज्ञान व धर्म की गवेषणा नहीं अपितु इन्द्रियातीत सत्य की खोज करना है। इस संस्कृति में कला का काम साहित्य, संगीत, इसकी शासन व्यवस्था, परिवार एवं अन्य सामाजिक संगठन की भौतिकता से नहीं आध्यात्मिकता से अनुप्राणित होते हैं। भारतीय संस्कृति अध्यात्मवादी संस्कृति रही है। सोरोकिन ने परोक्षवादी संस्कृति को प्रत्यक्षवादी संस्कृति से उच्च स्थान दिया है तथा परोक्षवादी संस्कृति के दो प्रकार बताये हैं :

आत्म अनुशासित परोक्षवाद

इसमें आवश्यकताओं और लक्ष्यों की पूर्ति आवश्यकताओं में कमी करके पूरा किया जाता है तथा आदर्शात्मक संसार को माया, अवास्तविक तथा अस्तित्वहीन माना जाता है। सम्पूर्ण आदर्शात्मक सामाजिक वातावरण और यहाँ तक कि व्यक्तिगत स्व भी चरम वास्तविकता उच्च आदर्श में घुल जाता है।

क्रियाशील परोक्षवाद

सामान्य परोक्षवाद के समान क्रियाशील परोक्षवाद आवश्यकताओं और लक्ष्यों की पूर्ति व्यक्तियों की

आवश्यकताओं और लक्ष्यों की पूर्ति व्यक्तियों की आवश्यकताओं को कम करके नहीं अपितु आदर्श संसार के स्थानान्तरण द्वारा और विशेष रूप से सामाजिक सांस्कृतिक संसार का इस प्रकार से जैसे आध्यात्मिक वास्तविकता के साथ इसमें सुधार किया जा रहा हो। इस संस्कृति के अनुयायी माया के संसार से भागते नहीं हैं और न ही अपनी आत्मा को चरम वास्तविकता में मिला देते हैं बल्कि इसे ईश्वर के अत्यधिक पास लाने का प्रयत्न करते हैं, न केवल अपनी आत्मा की रक्षा के लिये अपितु समस्त मानवों की रक्षा के लिये। महान आध्यात्मिक सुधारक ईसाई ग्रिगोरी द ग्रेट और लियो द ग्रेट जैसे पादरी क्रियाशील परोक्षवाद मानसिकता के उदाहरण हैं।

चेतनात्मक संस्कृति

इस संस्कृति का सम्बन्ध इन्द्रियजनित बोध से है। फ्रान्सिस इ0 मेरिल10 ने लिखा है कि भौतिक संस्कृति वाह्य या मानव की अर्न्तक्रिया की शारीरिक अभिव्यक्ति है। जिसमें हम किसी वस्तु को देख सकते हैं, सुन सकते हैं और अनुभव कर सकते हैं। चेतनात्मक वास्तविकता को हो रहा, प्रक्रिया, परिवर्तन, उद्विकास, प्रगति, स्थानान्तरण आदि के रूप में सोचा गया है। इसकी आवश्यकताऐं और लक्ष्य मुख्यतः शारीरिक है। अधिकतम आवश्यकताओं की पूर्ति अधिकतम साधनों द्वारा ही होती है।

यद्यपि यह विशेषतायें सभी चेतन सांस्कृतिक मानसिकता में समान होती है। लेकिन ''समायोजन की विधि'' के आधार पर इसे अन्य प्रकारों से भेद किया जा सकता है।

क्रियाशील चेतनात्मक संस्कृति मानसिकता

सोरोकिन ने इसे क्रियाशील ''एपिक्यूरियन्स'' भी कहा है यह संस्कृति आवश्यकताओं और लक्ष्यों की पूर्ति के आन्तरिक समायोजन पुर्नमायोजन, पुननिर्माण में खोजती है। आवयव, असावयव का स्थानान्तरण और समाज सांस्कृतिक संसार को मुख्यतः वाह्य रूप से सोचा गया है। इतिहास के महान विजेता, साम्राज्य को बनाने वाले आदि इस सांस्कृतिक मानसिकता के अवतार हैं।

निष्क्रित्य चेतनात्मक मानसिकता

सोरोकिन ने इसे (पैसिव) निष्क्रित्य सुखवाद एपिक्यूरियनिज्म भी कहा है। इस प्रकार की मानसिकता में शारीरिक आवश्यकताओं और उद्देश्यों की पूर्ति न तो ''स्व'' के आन्तरिक परिवर्तन न ही वाह्य संसार के पुनर्निर्माण से अपितु दूसरों के शोषण व वाह्य वास्तविकता के उपयोग से संभव है। शारीरिक आनन्दों की प्राप्ति तथा ''जीवन छोटा है'', ''मदिरा महिला और गाना'', ''खाओ पिओ मस्त रहो'' इत्यादि इस प्रकार की सांस्कृतिक मानसिकता के आदर्श वाक्य हैं।

उल्लेखनीय है कि भारत में बृहस्पति द्वारा प्रतिपादित चार्वाक दर्शन इसी प्रकार की सांस्कृतिक मानसिकता का उदाहरण है। चार्वाक पूर्णतया भौतिकवादी संसार में आस्था वाला दर्शन है। इस दर्शन में किसी पारलौकिक सत्ता में विश्वास नहीं किया जाता है। जब तक वयिक्त जीवित रहता है उसे आनन्द के साथ रहना चाहिये। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ऋण लेकर भी की जा सकती है। इस सिद्धान्त में आत्मा तथा पुनर्जन्म में भी विश्वास नहीं किया जाता है। महर्षि बृहस्पति का कहना था कि जब यह शरीर राख हो जायेगा तो फिर यह पुनः वापस कैसे आ सकता है?

उपहासक चेतनात्मक मानसिकता

इस प्रकार की मानसिकता से प्रभुत्वपूर्ण सभ्यता, इसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि को पाने की खोज में उन आदर्शात्मक मुखौटों को, जोकि शारीरिक लाभ में महानतम वापसी की शपथ लेती है, को उतारने (डापिंग) और अपने को सुसज्जित करने की विशिष्ट युक्ति का प्रयोग करती है। यह मानसिकता संसार के समस्त टारटफ्स द्वारा उदाहरण देकर समझी गयी है जो कि अपने मनोसामाजिक रंग (Colours) को परिवर्तित करने और उनके मूल्यों को प्रवाह के साथ चलने के लिये पुर्नसमायोजन करने के अभ्यस्त होते हैं।

संस्कृति और मानसिकता के मिश्रित प्रकार

अन्य दूसरी सांस्कृतिक मानसिकतायें विभिन्न संयोगों में चेतनात्मक स्वरूप और परोक्षवादी स्वरूप मिश्रण को, प्रस्तुत करती है। इसके दो प्रकार हैं :–

आदर्शात्मक संस्कृति मानसिकता

परिमाणात्मक रूप में यह परोक्ष और चेतनात्मक का कम या अधिक संतुलित एकीकरण प्रस्तुत करती है। यद्यपि परोक्षवादी तत्व की प्रधानता रहती है। गुणात्मक रूप में देखने पर आध्यात्मिक व भौतिक तत्वों में सर्वदा परिवर्तन हो रहा है, के पहलू से वास्तविकता बहुपक्षीय है। इसकी आवश्यकताओं और साधन आध्यात्मिक और भौतिक दोनों ही है।

मिथ्या परोक्षवादी संस्कृति मानसिकता

इसमें साधन और आवश्यकतायें प्रधान रूप से शारीरिक प्रकृति की है। वे केवल संयत रूप से संतुष्ट की जाती है और संतोषण की विधि नहीं है। सामाजिक वातावरण के एक क्रियाशील परिवर्तन और न ही स्व का स्वतन्त्र परिवर्तन है, न ही आनन्द की खोज है और न ही सफलतापूर्वक पाखंड है क्योंकि दासों का कठोर परिस्थितियों में जीवनचक्र या किसी कठोर शासक के राज्यकाल में प्रजा की जीवन प्रक्रिया इस प्रकार की मानसिकता के प्रकार हैं।

सोरोकिन ने ''द क्राइसिस ऑफ अवर एज'' अध्याय में लिखा है कि हम लोग वस्तुतः दो युगों के मध्य में हैं : हमारी शानदार बीते हुये कल की मृतप्राय चेतनात्मक संस्कृति और आने वाली आदर्शात्मक या परोक्षवादी संस्कृति या रचनात्मक आने वाले कम। हम लोग छः सौ वर्ष लम्बे चेतनात्मक दिन के अन्त में रह रहे हैं। विचार कर रहे हैं तथा कार्य कर रहे हैं। ''शान के सूर्य की किरणें अब भी अतीत युग की शान को प्रकाशित कर रही है। लेकिन प्रकाश धीरे–धीरे कम हो रहा है और गहरे होती (अन्धकार की) छाया में तथा गोधूलि के भ्रम में हमें अपने को सुरक्षित समझने में कठिनाई हो रही है। इससे परे महान आदर्शवादी या परोक्षवादी संस्कृति की ऊषा शायद भविष्य की पीढ़ियों के स्वागत के लिये प्रतीक्षा कर रही हैं।''

इस प्रकार इतिहास, परिवर्तन (गत्यात्मक) की समय सारिणी के साथ आगे की ओर बढ़ रहा है। चेतनात्मक संस्कृति का महान संकट इसकी स्तंम्भित प्रत्यक्ष दृष्टि (पतन) में है। हमारी आँखों के सामने यह

संस्कृति आत्महत्या कर रही है। यदि यह हमारे जीवनकाल में नही मरती तो यह आत्म–विनाश के धावों से और इसकी रचनात्मक शक्तियों से खाली यह कठिनता से पुनः संभल सकती है।

अर्थ–जीवित तथा अर्थमूर्त यह चेतनात्मक संस्कृति अपनी तड़पन में हो सकता है कुछ दशकों बाद धीरे–धीरे भरे लेकिन इसके बसंत और ग्रीष्म (अर्थात् अच्छे दिन) निश्चित रूप से समाप्त हो चुके हैं।''

ऐसी परिस्थितियों में हमारी पीढ़ियों का यह कर्तव्य है कि भावी समाज और संस्कृति के लिये रचनात्मक योजनाओं को निरूपित करें। नवीन समाज–सांस्कृतिक व्यवस्था के लिये कोई दूरदर्शी योजना चेतनात्मक संस्कृति की शासन व्यवस्था से परे आदर्शवादी या परोक्षवादी संस्कृति की नवीन शासन व्यवस्था की ओर होनी चाहिये। बिना इस प्रकार के आमूल परिवर्तन के भविष्य में रचनात्मक तथा निर्माणकारी समाज असंभव है।

सोरोकिन ने चेतनात्मक संस्कृति को रचनात्मक मानते हुये लिखा है कि मानवता को चेतनात्मक संस्कृति के आश्चर्यजनक प्रयत्नों के लिये उसके प्रति आभारी होना चाहिये, लेकिन आज जब यह तड़पन विश्वंस के कगार पर है, जबकि इसके परिणाम ताजी वायु की अपेक्षा विषयुक्त गैस के समान है, जबकि इसने अपने प्रयत्नों से मानव के हाथ में भयंकर शक्ति प्रकृति तथा समाज पर विजय पाने के लिये दे दी है। अपने को बिना आत्म नियंत्रण में रखे हुये, चेतनात्मक भूख अब एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में है, इसके वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रयत्नों के साथ कि यह निरन्तर संचय मानवता और इसके मूल्यों के लिये खतरनाक होता जा रहा है।

हमारे समय की सर्वाधिक मुख्य आवश्यकता एक ऐसे व्यक्ति की है जो कि अपने और अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखे, जो कि अपने सहयोगियों के प्रति दयायुक्त है, जो कि समाज व संस्कृति के लिये शाश्वत मूल्य देख और खोज सकता है तथा जो कि इस विश्व के प्रति अपनी अपूर्व जिम्मेदारी समझता है। यदि प्रकृति की शक्तियों पर विजय पाने का कार्य सदैव चेतनात्मक संस्कृति पर रहा है तो व्यक्तियों को नीरस बनाना, उसका मानवीकरण, एक नैसर्गिक निरपेक्ष में सहभागी के रूप में हमेशा आदर्शवादी या परोक्षवादी संस्कृति का प्रमुख कार्य रहा है।

चेतनात्मक संस्कृति ने सदैव मनुष्य तथा मानव एवं समाज की उन्नति तथा प्रगति के पक्ष में ही अपने को क्रियाशील रखा लेकिन यह चेतनात्मक संस्कृति चेतना व्यक्ति के लिये भी खतरनाक हो गयी है। अतः चेतनात्मक से आदर्शवाद की ओर हमें स्थानान्तरित होने की आवश्यकता है।

सोरोकिन के अनुसार परोक्षवादी संस्कृति जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। तब प्रत्यक्षवादी संस्कृति उत्पन्न होने लगती है, जब प्रत्यक्षवादी संस्कृति अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब परोक्षवादी संस्कृति का जन्म होने लगता है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह प्रक्रिया कैसे उत्पन्न होती है? सोरोकिन का कहना है कि जिस प्रकार अनार के बीज से अनार पैदा हो जाता है वैसे ही अपनी अभ्यान्तर प्रकृति के कारण समाज तथा संस्कृति का विकास परोक्षपरक से प्रत्यक्षपरक तथा प्रत्यक्षपरक से परोक्षपरक होता रहता है। अगर कोई वाह्य कारण भी आ पड़े तो समाज का एवं संस्कृति का नाश भी हो सकता है परन्तु यदि कोई विनाशकारी वाह्य कारण उपस्थित न हो तो समाज का स्वाभाविक प्राकृतिक विकास स्वतः होता जाय। विकास का रूप इसी प्रकार का होता है। प्रत्यक्षवादी संस्कृति के चरम सीमा पर पहुँच जाने से परोक्षवादी संस्कृति का तथा परोक्षवादी संस्कृति के चरम सीमा पर पहुँच जाने से प्रत्यक्षवादी संस्कृति का जन्म होता है। यह स्वाभाविक है, इसमें अन्य कोई कारण कारगर नहीं होता।

पर्यावरणवाद परिवर्तन को पर्यावरणीय शक्तियों की वाह्य व्याख्याओं का एक सिद्धान्त है। यह संस्कृति या समाज के विकास या विनाश या परिवर्तन में पर्यावरण को महत्व देता है। लेकिन सोरोकिन ने कहा है कि किसी सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था में परिवर्तन का कारण स्वयं व्यवस्था ही है। कहीं और देखने की आवश्यकता नहीं है। इसे सोरोकिन ने ''अर्न्तव्यापी परिवर्तन का नियम कहा है।'' दूसरे शब्दों में वह सिद्धान्त जो इस बात की व्याख्या करता है कि कोई भी सामाजिक या सांस्कृतिक व्यवस्था क्षण पर लिये स्थिर नहीं है। अर्न्तव्यापी परिवर्तन का सिद्धान्त है।

सोरोकिन ने लिखा है कि :–

"The Capitalist system bears within itself the seeds of its own destruction. Hegel and Marx were correct in predicting its immanent, or "dialectical", self destruction..... the contemporary sensate.... system. (Whether Capitalistic, Marxian, Communistic or other form) is rapidly Crumbling under our very eyes[11]."

कोई भी समाज सांस्कृतिक व्यवस्था जो कि स्वाभाविक रूप से परिवर्तित हो रही है, जो कि अर्न्तव्यापी परिणामों की श्रृंखला को चालित करती है वह न केवल व्यवस्था के वातावरण को अपितु सम्पूर्ण व्यवस्था को ही परिवर्तित कर देती है। कोई भी समाज सांस्कृतिक व्यवस्था जिसमें कि परिवर्तन के बीच निहित है।

सोरोकिन के अनुसार यद्यपि पर्यावरणीय शक्तियाँ इंकार करने योग्य नहीं हैं लेकिन उनकी भूमिका मुख्यतः बाधा पहुँचाने में रही है तथा व्यवस्था के अन्तर्गव्यापी संभावनाओं के यथार्थीकरण में प्रबलन में रही है। कुछ समय में पर्यावरणीय शक्तियाँ व्यवस्था को कुचल सकती हैं और अस्तित्व को समाप्त कर सकती हैं या अन्तर्व्यापी संभावनाओं के बिना मुड़ने की प्रक्रिया को रोक सकती हैं लेकिन व्यवस्था की अन्तर्व्यापी संभावनाओं में आमूल परिवर्तन नहीं कर सकती हैं।

व्यवस्था अपनी उत्पत्ति के समय से ही अपना भावी जीवनवृत्त रखती हैं। यह एक आत्म–निर्णयवादी व्यवस्था है। यह आत्म निर्णय–निर्णयावाद तथा अनिर्णयवाद से भिन्न है। यह एक ''सुई जेनेरिस'' का सिद्धान्त है।

सोरोकिन का कहना है कि ''परिस्थितिवादी'' या ''वाह्यकारणतावादी'' जब सामाजिक अथवा सांस्कृतिक परिवर्तन का वाह्य कारण बतलाते हैं तब अनवस्था दोष में पड़ जाते हैं। परिवार में परिवर्तन क्यों हुआ है? क्योंकि

औद्योगीकरण का प्रभाव परिवार की रचना पर पड़ा है। इस प्रकार ''परिस्थितिवादी'' कारण की श्रृंखलाओं में वास्तविकता से दूर हो जाते हैं। सोरोकिन के अनुसार संस्कृतियों में परिवर्तन उनकी अभ्यान्तर प्रक्रिया में निहित है। इसी को उसने ''अन्तर्व्यापी परिवर्तन का नियम कहा है।

सोरोकिन ने ''सांस्कृतिक एकीकरण'' के सिद्धान्त में इस बात का प्रतिपादन किया है कि संस्कृति तभी तक संस्कृति कहला सकती है जब उसमें एकीकरण की प्रक्रिया है। उदाहरणार्थ प्रत्यक्षवादी संस्कृति में जो कुछ दिखता है, प्रत्यक्ष है, उसी को मानें, जो नहीं दिखाता उसको न मानें, भौतिक दृष्टिकोण से ही हर क्षेत्र में विचार करें, किसी क्षेत्र में भौतिक तथा किसी क्षेत्र में आध्यात्मिक दृष्टिकोण से चिन्तन न करें, उनके हर काम को प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण से ही समझा जा सके, तब यह संस्कृति एकीकरण की संस्कृति होगी। यही नियम परोक्षवादी संस्कृति पर लागू होता है। संस्कृति के सब अंग, उसके सब भाग एक दूसरे के पूरक होने चाहिये, पूरक होते हुए संस्कृति का जो मुख्य रूप है, प्रत्यक्षवादी या परोक्षवादी, उसके अनुरूप होने चाहिये। अगर अनुरूप नहीं होंगे तो संस्कृति की ''विशिष्ट रचना'', उसका ''एकीकरण'' नहीं रहेगा, संस्कृति परस्पर विरोधी हो जायेगी। ऐसा तत्व जो उसकी संस्कृति से मेल नहीं खाता, विदेशी तत्व होने के कारण उस संस्कृति के अन्दर रगड़ पैदा करता रहेगा। उदाहरणार्थ संगीत में स्वरों का एकीकरण रहता है जो कि संगीत को संगीतात्मकता प्रदान करता है। सोरोकिन का कहना है कि प्रत्यक्षवादी तथा परोक्षवादी संस्कृतियों की रचना अपना–अपना विशिष्ट रूप है। अपना–अपना एकीकरण है। इन संस्कृतियों के अंगों का आपस में अनुरूप होना आवश्यक है। प्रत्यक्षवादी संस्कृति के भिन्न–भिन्न अंगों की एक दूसरे के साथ अनुरूपता है, इस अनुरूपता के कारण इस संस्कृति में एकीकरण है। इसी प्रकार परोक्षवादी संस्कृति के भिन्न–भिन्न अंगों की भी एक दूसरे के साथ अनुरूपता है और इस अनुरूपता के कारण इस संस्कृति में भी ''एकीकरण'' है। एक प्रकार से सांस्कृतिक तत्वों के एकीकरण से परोक्षवादी संस्कृति पैदा हो जाती है।

सोरोकिन ने परिवर्तन को सीमाबद्ध किया है तथा ''सीमा का सिद्धान्त'' प्रतिपादित किया जिसके अनुसार सामाजिक परिवर्तन एक निश्चित सीमा में होकर रूक जाता है। सोरोकिन ने ''सीमा के सिद्धान्त'' में 3 तत्वों का समावेश किया है :

(अ) कार्यकारण – प्रकार्यात्मक संबंध में सीमा।

(ब) सामाजिक – सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा में सीमा।

(स) परिवर्तन के सीमाबद्ध संभावनाओं का सिद्धान्त।

सोरोकिन के अनुसार सीमाओं का सिद्धान्त सामाजिक प्रक्रिया की दिशा में महत्वपूर्ण है। विशेषरूप से 18वीं शताब्दी से सामाजिक और जीव विज्ञानों को उद्विकास और प्रगति की रैखिक गति के सिद्धान्तों द्वारा बर्बाद किया गया है। इन सिद्धान्तों की यह मान्यता है कि सामाजिक या जैविक प्रक्रियायें बिना किसी सीमा के उसी दिशा की ओर रेखिक गति से बढ़ती रहती हैं। सोरोकिन ने कहा है कि समाज– सांस्कृतिक प्रक्रियाओं में यह सिद्धान्त नहीं लागू किया जा सकता। अपने कथन को पुष्ट करने के लिए उसने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि सामाजिक प्रक्रियायें अत्यन्त जटिल हैं। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम हमें यह बताता है कि किन परिस्थितियों में यह संभव है या पर्यावरणीय प्रभावों से पूर्णतया पृथक्करण आवश्यक है अन्यथा एक ही दिशा में एक निश्चित गति असंभव है और वाह्य शक्तियों को संघर्ष या घर्षण उस गति को अव्यवस्थित कर देंगे या उसकी दिशा परिवर्तित कर देंगे। उदाहरणार्थ गुरुत्वाकर्ष की शक्तियों के माध्यम से रेखिक गति चक्रिक हो जाती है। सोरोकिन ने हीगल के द्वन्द्ववाद के माध्यम से अपने तर्क को पुष्ट करते हुए लिखा है कि कोई भी परिवर्तन बिना घुमाव या उतार–चढ़ाव की लय के उसी दिशा में अनवरत संभव नहीं है।

अपने परिवर्तन के सीमाबद्ध संभावनाओं के सिद्धान्त को सोरोकिन ने कार्य–कारण व एकदैशिक क्षेत्रों में सीमा के सिद्धान्त का भ्रामक बताया है।

निष्कर्ष

वस्तुतः सोरोकिन अपने अध्ययन में अपूर्व इतिहास की घटनाओं का समावेश किया जिनके आधार पर ज़िमरमैन[12] ने सोरोकिन को ''विश्व का महान समाजशास्त्री'' कहा है।

कार्ल मैनहाइम[13] ने ज्ञान के समाजशास्त्र की व्याख्या में पाया था कि विचार का अस्तित्व सामाजिक परिस्थिति के संदर्भ में ही होता है। इस विचार को हम सोरोकिन के संदर्भ में तर्कसंगत पाते हैं। सोरोकिन ने अपने जीवन का अधिकतम समय सामाजिक परिवर्तन में व्यतीत किया। उसने जैसा कि इसे कहा था कि देश निर्वासन के पश्चात् उसने अपने स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त कर लिया। उसने सामाजिक परिवर्तन का अर्थ खोजा, यह क्यों होता है, इसने व्यक्तियों और समाजों के लिये क्या किया? उसके दूसरे जीवन, जबकि देश निर्वासन के बाद उसने जो पहली पुस्तक लिखी ''सोशियालोजी ऑफ रिवोल्यूशन''। दूसरी ''सोशल मोबिलिटी'' या मूल्यों, विचारों, वर्गों या अन्य सामाजिक वस्तुओं के परिवर्तन से संबंधित। 'कन्टेम्परेरी सोशियालोजिकल थ्योरी' वस्तुतः एक पाट ब्यायलर थी। 'रूरल–सोशियोलोजी' देश और नगर के बीच क्षैतिज और रैखिक गतिशीलता का अध्ययन था। उस समय से सामाजिक सांस्कृतिक गतिशीलता से संबंधित अध्ययनों को इन 4 खंडों में समाविष्ट किया। सोरोकिन को समय–समय पर कटु आलोचनाओं का सामना भी करना पड़ा है।

प्रमुख आलोचना यह है कि वस्तुतः यह विवादास्पद विषय है कि उसने चेतनात्मक, परोक्षवादी या आदर्शवादी संस्कृतियों को प्रस्तुत किया है वह वास्तव में सांस्कृतिक स्तर है या मात्र मानसिक अवधारणायें।

सोरोकिन ने एक ओर तो सांस्कृतिक उच्चावचय की प्रक्रिया को बताया है तो दूसरी ओर बिना आमूल परिवर्तन के भविष्य में निर्माणकारी व रचनात्मक समाज की असंभावना की कल्पना की है। इस प्रकार उसके विचार स्वयं में विवादास्पद है।

सोरोकिन का अन्तर्व्यापी परिवर्तन का सिद्धान्त पर बल विशिष्ट परिवर्तनों के वैज्ञानिक व्याख्या के परित्याग की ओर ले जाता है। यदि प्रत्येक वस्तु किसी भी प्रकार से परिवर्तित हो रही है और प्राथमिक रूप से अन्तर्व्यापी परिवर्तन के सिद्धान्त के अनुसार तो सामाजिक परिवर्तनों की व्याख्या में क्यों चिन्ता की जाये?

एक और आपत्ति सोरोकिन के अन्तर्व्यापी परिवर्तन के सिद्धान्त पर है कि सोरोकिन ''सीमा'' को परिभाषित नहीं कर सका। हम किस प्रकार से कह सकते हैं कि अमुक सामाजिक परिवर्तन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है[14]? अमेरिका की भौतिकवादी संस्कृति से विश्रान्त लोग अब आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत हो उठे हैं। उनमें अब हिन्दू धर्म और आध्यात्मक के प्रति रूचि, कौतूहल और आकर्षण बढ़ रहा है। इसका कारण यह है कि अत्यधिक भौतिकवादी व्यवस्था के कारण नैतिकता, शांति, सुरक्षा और पारिवारिक व्यवस्था की क्रमिक समाप्ति का संकट उन्हें बेचैन किये हैं। उल्लेखनीय है कि हाल के वर्षों में सबसे अधिक मंदिरों का निर्माण अमेरिका में हुआ है। यहाँ बड़ी तेजी से आध्यात्म की धारा बह चली है। विदेशों के मंदिर सामाजिक रीति–रिवाजों के सिलसिले में भी मिलन के स्थल है। इन मंदिरों में मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह आदि भी आयोजित होते हैं।[15]

राब्र्ड एस0 एलवुड[16] ने लिखा है कि आज अमेरिका निवासी एक लंबी संख्या में हिन्दू धर्म की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

सोरोकिन ने लिखा है कि मानवता को चेतनात्मक संस्कृति की आश्चर्यजनक प्रयत्नों के लिये आभारी होना चाहिये। लेकिन विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास से चेतनात्मक संस्कृति विध्वंस की ओर अग्रसर हो रही है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि चेतनात्मक, संस्कृति की समस्त उपलब्धियाँ रचनात्मक ही हों। सोरोकिन ने चेतनात्मक संस्कृति को रचनात्मक समझने की भूल की है।

वास्तविकता यही है कि चेतनात्मक संस्कृति तथा विज्ञान का विकास सम्पूर्ण मानवता को विध्वंस की ओर ले जायेगा।

हैंस स्पीयर[17] ने लिखा है कि :–

"In the fourteenth book of Augustines 'Ciritas Dei' we read : "Epicurean Philosophers lived after the flesh because they placed man's highest good in bodily pleasure; and .... those others do so who have been of opinion that in some form or other bodily good is man's supreme good." According to Augustine the next higher level of life is represented by the stoics, who place the supreme good of man in the soul. "Since" both the soul and the flesh, the Component parts of man, can be used to signify the whole man". Both epicureans and stoics (and platonists) live "according to man", or one may say that they live according to reason, if reason can be divorced from faith, only the Christian, in his faith, lives according to God.

Sorokins basic distinction between "Sensate", idealistic "and" ideational" bears more than a faint resemblance to the ideas expressed in this quotation from Augustine. Sorokins' basic philosophy may be regarded as a modern vulgarization of early Christian thinking.

अन्ततोगत्वा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सोरोकिन का सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन का सिद्धान्त अपने तर्कों की पूर्णता के अभाव में उसकी स्वयं की उपलब्धि ''फेड्स एण्ड फोइब्सि के करीब ही है। सोरोकिन ने यह कहा है कि आज समाजशास्त्र का विशाल क्षेत्र अफलप्रसूफूलों (Sterile Flowers) तथा (घास–पात) (Weeds) से भरपूर है। समाजशास्त्र क्या है और उसे क्या होना चाहिये, संस्कृति क्या है, प्रगति क्या है, समाज और व्यक्ति में क्या संबंध है और ऐसे ही अनेक परिकल्पित वाद–विवाद या अध्ययन ही समाजशास्त्र के विशाल क्षेत्र के'' अफलप्रसू फूलों के उदाहरण हैं। अफलप्रसू फूलों के उदाहरण हैं। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि सोरोकिन द्वारा प्रतिपादित सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन का सिद्धान्त वैज्ञानिकता के अभाव में ''अफलप्रसू फूलों'' का एक उदाहरण मात्र ही है। परिवर्तन के दौर में पुर्नअध्ययन पर आधारित वैज्ञानिक सिद्धान्त करना समय की आवश्यकता है।

अंत टिप्पणी

1. *के0आर0 पापरद ''दा ओपेन सोसाइटी एण्ड इट्स एनमीज'' खण्ड–1, लन्दन रोटलीज एण्ड केगन पाल लिमिटेड, ब्राडवे हाउस (चौथा संस्करण, 1962) पृष्ठ 11 में उद्धृत*
2. *अगस्त कोन्त, ''पाजिटिव फिलासफी'' एच0 मार्टिनियम द्वारा अनुदित*
3. *डब्लू एफ0 आगबर्न, ''सोशल चेन्ज'' न्यूयार्क : ह्यूवसक, 1922*
4. *ओस्वाल्ड स्पेन्गलर, ''द डिक्लाइन आव वेस्ट'' चार्ल्स फ्रान्सिस एटकिन्स द्वारा अनुदित (खण्ड–2) न्यूयार्क : एल्फ्रेड ए0नाफ0, 1926*
5. *आर्नल्ड टायनबी, ''ए स्टडी आव हिस्ट्री'', न्यूयार्क आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957*
6. *बी0 मैलिनोस्की, ''द डायनैमिक्स आव कल्चर चेन्ज'', न्यू हैवेन, कान : येल यूनिवर्सिटी प्रसे, 1945*
7. *रूथ बेनेडिक्ट, ''पैटर्नस आव कल्चर'' (बोस्टन : हाटन मिफलिन, 1934)*
8. *पीट्रिम ए सोरोकिन, ''सोशल एण्ड कल्चर डायनैमिक्स'' (पीटर ओवेन लिमिटेड एब्रिज्ड फार्म, लन्दन 1957)।*
9. *पूर्वोक्त : पृष्ठ 627*
10. *फ्रान्सिस इ मेरिल, ''सोसाइटी एण्ड कल्चर'' पृष्ठ संख्या 120*
11. *सोरोकिन, ''सोसाइटी कल्चर एण्ड पर्सनाल्टी : देयर स्ट्रक्चर एण्ड डायनमिक्स'', न्यूयार्क : हार्पर एण्ड ब्रदर्स, 1947, पृष्ठ 704–706*
12. *कार्ल सी0 जिमरमैन, ''सोरोकिन–द वर्ल्डस ग्रेटेस्ट सोशियोलोजिस्ट'', हिज़ लाइफ एण्ड आइडियाज़ आन शोसल टाइम एण्ड चेन्ज, 1968 सासक्टून सासकालचेवन यूनिवर्सिटी।*

13. *कार्लमैनटाइम, ''आइडियोलोजी एण्ड यूटोपिया'' ''लुई वर्थ और एडवर्ड शिल्स द्वारा अनुदित (न्यूयार्क हार्वेस्ट, बुक्स, 1936)*
14. *एलविन टाफलर, 'पन्यूचर शाक' (एक नेशनल जनरल कम्पनी, न्यूयार्क) पृ0 20, 1971*
15. *धर्मयुग ''संसार भर में हिन्दू मन्दिर'' लेखक श्री लल्लन प्रसाद व्यास, 11 दिसम्बर 1983*
16. *राबर्ट एस0 एलवड, ''रिलीजियस एण्ड स्पिच्यल ग्रुप्स इन मार्डन अमेरिका''।*
17. *हैंस स्पियर इन हेनरी ई0 आर्न्स (एड) ''एन इन्ट्रोडक्शन टू द हिस्ट्री आफ सोशियालोजी'' द यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, शिकागो, इलिनोइस, पृ0 896।*